भ्रम

भाग - २

मानसिक 'भ्रांतियों' के अलावा हम **धार्मिक भ्रांतियों में भी बुरी तरह फँसे हुए हैं** । हमारे धार्मिक अथवा **परमार्थिक –**

ख्याल
ज्ञान
निश्चय
श्रद्धा
कर्म क्रिया
पाठ–पूजा
जप–तप
हठ

आदि – **सारे 'साधन' भी इसी त्रि–गुणी मायिकी 'भ्रम–भुलावों' पर 'आधारित' हैं** । नेत्र हीन अँधे –जो कुछ सोचते या कर्म करते हैं, वह उनकी **ऊपरी और अधूरी सुनी–सुनाई मानसिक कल्पना, अथवा 'भ्रम' पर ही निर्भर है, जो कि गलत हो सकता है ।**

अंधी कंमी अंधु मनु मनि अंधै तनु अंधु ।। (पृ १२८७)

अंधा जगतु अंधु वरतारा बाझु गुरू गुबारा ।। (पृ. ६००)

अंधु अगिआनी कदे न सीझै ।। (पृ. १६०)

इसी तरह मानसिक **भ्रम के अँधकार में**, हम जो भी क्रिया – कर्म करते हैं, सब **खोखले, अधूरे, गलत और व्यर्थ होते हैं** । इसी कारण इतने पाठ, पूजा, **धर्म, कर्म, करते हुए भी** हमें –

आत्मिक शांति नहीं मिली
पाँच विकारों से छुटकारा नहीं हुआ

अनुभव प्रकाश नहीं हुआ
'नाम' की प्राप्ति नहीं हुई
आत्मिक रस नहीं प्राप्त हुआ
अनहद धुनि नहीं सुनी
गोबिंद नहीं गजा ! (परमात्मा का अनुभव नहीं हुआ)

हम परमार्थ के पथिक, आम जनता की तरह, **मोह – माया के अँधकार में भटकते फिरते हैं**, और 'कुएँ के मेंढक' की तरह, त्रि गुणी मायिकी **भ्रम गढ़ के कूड़ जीवन में ही संतुष्ट हैं**, अपितु इसी में गर्व महसूस करते हैं ।

पूजा अरचा बंदर डंडउत खट करमा रतु रहता ।।
हउ हउ करत बंधन महि परिआ नह मिलीऐ इह जुगता ।।
जोग सिध आसण चउरासीह ए भी करि करि रहिआ ।।
वडी आरजा फिरि फिरि जनमै **हरि सिउ संगु न गहिआ ।।** (पृ ६४२)

पूजा करहि परु बिधि नही जाणहि दूजै भाइ मलु लाई ।।(पृ. ६१०)

सासत सिंमृति बेद चारि मुखागर बिचरे ।।
तपे तपीसर जोगीआ तीरथि गवनु करे ।।
खटु करमा ते दुगुणे पूजा करता नाइ ।।
रंगु न लगी पारब्रहम ता सरपर नरके जाइ ।। (पृ ७०)

काहू लै पाहन पूज धरयो सिर काहू लै लिंग गरे लटकाइओ ।।
काहू लखिओ हरि अवाची दिसा महि काहू पछाह को सीसु निवाइओ ।।
कोऊ बुतान को पूजत है पसु कोऊ म्रितान को पूजन धाइओ ।।
कूर क्रिआ उरझिओ सभ ही जग सी भगवान को भेदु न पाइओ ।।
(सवैये पा. १०)

त्रि गुणी मायिकी मंडल में, **सीमित बुद्धि का ही 'खेल' है** । हमारी बुद्धि कितनी भी तीक्ष्ण हो, **इस से उत्पन्न ज्ञान केवल 'अँधे की टोह' के बराबर अधूरा और सीमित है** । ऐसा 'दिमागी ज्ञान' किसी सीमा तक ही सोच 'विचार' करता है, परंतु **अनुभवी मंडल तक इस की पहुँच नहीं है** ।

जब तक अनुभव प्रकाश द्वारा, 'मायिकी भ्रम' पूरी तरह दूर नहीं होता, हम हर बात, अथवा **धार्मिक और आत्मिक निश्चयों को भी, भ्रम वाली 'धुँधली'**

बुद्धि के द्वारा ही सोचते, परखते तथा समझते हैं । इस अधूरी धुँधली बुद्धि के ज्ञान पर आधारित, हमारा 'निश्चय' और श्रद्धा भी, खोखली, ऊपरी और गलत हो सकती है ।

इस तरह हम, 'भ्रम' की अज्ञानता में –

परमात्मा
गुरू
अवतार
साध
संत
कायनात (सृष्टि)
धर्म
कर्म–क्रिया

के विषय मे, अपने – अपने गलत या कूड़ कल्पनाएँ और निश्चय बनाए बैठे हैं ।

ऐसे अलग – अलग ख्यालों और निश्चयों के कारण ही वाद – विवाद होते हैं और **राजनीतिक राजसी, आर्थिक और सामाजिक झगड़े होते हैं । इन गलत निश्चयों के कारण ही धार्मिक तअस्सुब, नफरत, लड़ाईयाँ और खून खराबे अथवा जुल्म का बोलबाला हो रहा है ।**

जिस तरह एक अँधा दूसरे अँधे **का मार्गदर्शन नहीं कर सकता** और यदि अगर मार्गदर्शन करे भी, तो, दोनों को ही चोट लगती है और दोनों दुखी होते हैं व मंज़िल तक नहीं पहुँच पाते ।

अंधा आगू जे थीऐ किउ पाधरु जाणै ।। (पृ. ७६१)

गुरू जिना का अंधुला सिख भी करम करेनि ।। (पृ. ६५१)

अंधे कै राहि दसिऐ अंधा होइ सु जाइ ।।
होइ सुजाखा नानका सो किउ उझड़ि पाइ ।। (पृ. ६५४)

इसी तरह, आत्मिक प्रकाश के **अनुभव ज्ञान के बिना**, मानसिक 'भ्रम – भुलाव' में उलझे हुए 'धार्मिक प्रचारक' भी, अन्य जिज्ञासुओं को **आत्मिक 'जीवन दिशा' नहीं दे सकते ।**

अवर उपदेसै आपि न बूझै ।।
ऐसा ब्राहमणु कही न सीझै ।। (पृ ३७२)

उपदेसु करै आपि न कमावै ततु सइदु न पछानै ।। (पृ ३८०)

मुख ते पड़ता टीका सहित ।। हिरदै रामु नही पूरन रहत ।।
उपदेसु करे करि लोक दृड़ावै ।। अपना कहिआ आपि न कमावै ।।(पृ ८८७)

अनुभव 'आत्म – प्रकाश' के सच्चे 'तत् ज्ञान' के बिना जो प्रचार होता है, वह सब खोखला, ऊपरी, अधूरा और गलत हो सकता है, जिससे जनता, **और भी 'भ्रम व गलतफहमियों में पड़ कर, आत्म प्रकाश वाली सच्ची 'जीवन सेध' से 'दूर' जा रही है ।**

फोकटि धरमी भरमि भुलावै ।। (वा. भा. गु. १/१८)

इसी कारण संसार में **अनन्त धर्म प्रचार के बावजूद जनता 'धर्म' से बेपरवाह और नास्तिक हो रही है** । इस के अलावा संसार में **मज़हबी तअस्सुब, नफरत, वैर – विरोध, लड़ाईयाँ और खून खराबे में बढ़ोत्तरी हो रही है ।**

ब्रहमणि बहु परकारि करि सासत्रि वेद पुराणि लड़ाए ।।
खटु दरसन बहु वैरि करि नालि छतीसि पखंड रलाए ।।
तंत मंत रासाइणा करामाति कालखि लपटाए ।। (वा. भा. गु. १/१६)

हमारी अल्प बुद्धि के 'आत्मिक मंडल' का ज्ञान पढ़ा – पढ़ाया, सुना – सुनाया **कल्पनाओं का निश्चय ही है**, जिस के सहारे हम वाद – विवाद में पड़कर **सच्ची आत्मिक 'जीवन सेध' से दूर चले जा रहे हैं और अनुभवी आत्म प्रकाश से वंचित रहते हैं ।**

'आत्म मंडल' के प्रकाश के 'तत् ज्ञान' को, मायिकी अल्प बुद्धि द्वारा समझना, विचार करना, बूझना और प्रचार करना भी, 'मानसिक भ्रम' ही है । इस तरह हम ने **अनुभवी आत्म मंडल की उच्चता एवं महानता को अपनी अल्प बुद्धि तक सीमित कर दिया है** । यही हमारा **दीर्घ 'भ्रम – भुलाव' है** । जिस में सारा संसार ग्रसित है ।

कथनी बदनी करता फिरै **हुकमै मूलि न बुझई अंधा कचु निकचु ।।**
(पृ ५०६)

कथनी कहि भरमु न जाई ।। सभ कथि कथि रही लुकाई ।। (पृ. ६५५)
कथनी बदनी करता फिरै हुकमु न बूझै सचु ।। (पृ. ६५०)

सतसंग करते हुए, जब कभी मन पर गुरबाणी की चोट पड़ती है, तो **मन पिघल जाता है**, और वैराग्य में आ कर हम 'झूमने' लग जाते हैं, या **अनहोनी हरकतें करते हैं** और आँखों से वैराग्य के आँसू टपकते हैं।

यह **भावनात्मक अत्तेजना अथवा 'उबाल'**, दूध के उबाल की तरह, **क्षण भंगुर ही होता है** और **जल्दी ही मन में दृढ हुए मानसिक 'भ्रम', दुबारा छा जाते हैं।**

इसी तरह किसी उक्साहट के कारण, हमारे अंदर मज़हबी जोश भी **उबलता है, जिस** के असर में कई ऐसे अनावश्यक कर्म कर बैठते हैं, जिन का नतीजा अत्याधिक दुखदायी और तबाही वाला होता है।

यह **जज़बाती भावनाएँ और जोश हमारे मानसिक भ्रम भुलाव के कारण ही उत्पन्न होते हैं और अपना जलवा दिखा कर, पुनः 'भ्रम' में समा जाते हैं।** परंतु हम इस **मज़हबी उबाल को 'धार्मिक प्राप्ति' समझ कर**, इसी को ही अपनी **आत्मिक मंज़िल समझ लेते हैं।**

'आत्म – प्रकाश', 'अनहद शबद', 'नाम अमूल्य' को हम ने खोखले ज्ञान और सूखी फिलासफियों में ही बहा दिया है।

वास्तव में इस उच्च – उत्तम पावन पवित्र अनुभव प्रकाश के आत्मिक **'तत् – ज्ञान' को, हमने दिमागी ज्ञान तक सीमित कर दिया है।**

इस तरह हम अपने 'भ्रम – भुलाव' में, आत्म – मंडल की इस 'ईश्वरीय – देन' की, बढ़ाई एवं कदर कीमत आंकने की अपेक्षा, छुटिआई और निरादरी करते हैं।

लोगु जानै इहु गीतु है इंहु तउ बहम बीचार ।। (पृ ३३५)

मारगि मोती बीथरे अंधा निकसिओ आइ ।।
जोति बिना जगदीस की जगतु उलंघे जाइ ।। (पृ १३७०)

'शबद' अथवा **'नाम' 'प्रकाश' के बिना, संसार में मायिकी 'भ्रम' का अँधकार ही छाया रहता है।**

करहि बिकार विथार घनेरे सुरति सबद बिनु भरमि पइआ ।। (पृ. ६०६)

बिन सबदै सभु अंध अंधेरा गुरमुखि किसहि बुझाइदा ।। (पृ. १०६५)
बिन सबदै भरमु न चूकई ना विचहु हउमै जाइ ।। (पृ. ६७)

दृष्टमान स्थूल मायिकी मंडल के **'अँधेर – खाते' में, हमारे भ्रम – भुलावों के निश्चय, अत्यन्त दृढ़, गहरे और शक्तिमान हो चुके हैं**, परंतु **सूक्ष्म 'आत्म – प्रकाश' मंडल के तत् – ज्ञान से तो हम बिल्कुल ही अज्ञात या 'कोरे' हैं**। इसी कारण 'भ्रम' की अज्ञानता में, 'प्रभु' अथवा परमात्मा, गुरू, अवतारों और देवी देवताओं के विषय में भी, हमने अपनी – अपनी अल्प बुद्धि अनुसार मनोकल्पित –

हस्ती
स्वरूप
रंग
वेष
गुण
नाम

आदि, घड़े हुए हैं, और इन्हें भी –

देश
काल
कौमों
धर्मों
फिरकों
नस्लों
जातियों
परिवारों

तक 'सीमित' किया हुआ है ।

इस का सबूत यह है, कि सारे धर्मों अथवा फिरकों ने, अपने – अपने 'प्रभु', गुरू, अवतार, देवी – देवते आदि निश्चित करके, उनके **अलग – अलग 'स्वरूप' कल्पित किए हुए हैं,** और हर एक 'धर्म' और फिरकों के अन्दर, उनके विषय में भिन्न – भिन्न ख्याल, कल्पना, निश्चय, श्रद्धा और पूजा **दृढ़ की हुई है ।**

उदाहरण के रूप में, हमने अपने – अपने कल्पित 'प्रभु' या देवताओं को –

भिन्न – भिन्न नाम
भिन्न – भिन्न शक्लें
भिन्न – भिन्न शक्तियाँ
भिन्न – भिन्न कलाएँ
भिन्न – भिन्न धर्मो
अलग – अलग **कर्म – क्रिया**
अलग – अलग **मर्यादा**

में सीमित कर दिया है ।

जैसे कि, हमने किसी देवता को –

'सूंड' लगा दी है ।
'दस सिर' लगा दिए हैं ।
'चार – बाहें' लगी दी हैं ।
शेर पर चढ़ा दिया है ।
चूहे पर बिठा दिया है ।
बैल पर बिठा दिया है ।
डरावनी शक्ल बना दी ।

आदि, अनेक मनोकल्पित स्वरूप बनाए हुए हैं।

यहाँ ही बस नहीं, हम **अपने – अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए, प्राकृतिक 'तत्वों' को भी देवी – देवताओं के रूप में मानते हैं**, जैसे कि **पवन** – देवता, **जल** देवता, **अग्नि** – देवता, **सूरज** – देवता, **चाँद** – देवता तथा अन्य कई प्रकार के जानवरों, पत्थरों एवं वृक्षों की भी पूजा प्रचलित है, जैसे के साँप, पीपल, बोहड़ आदि ।

इस तरह हम अपने भ्रम के अँधकार में, और अनेक वहमों, **'शगुन – अपशगुनों'** में फँसे हुए हैं, जैसे कि –

तिथि – वार की विचार
देवी – देवताओं की पूजा
जानवरों अथवा पशुओं की उपासना

नौं गृहों और बारह राशियों की मन्नत

छींक – हिचकी की विचार

मणी – मसाणों की पूजा

दिशा की विचार

तंत्र – मंत्र – जंत्र पर विश्वास

जाति – कुल की विचार

सूत्तक के बन्धन एंव अशुद्धि

जादू – टोने की दहशत

आदि, हर एक देश में, अलग – अलग तरीकों से, **माने जाते हैं**। ऐसे 'वहम', 'भ्रम', 'शगुन', 'अपशगुन', केवल अनपढ़ पिछड़ी हुई जनता में ही नहीं, अपितु सुलझे हुए विद्वानों और आधुनिक देशों में भी, किसी न किसी शक्ल में, **प्रचलित हैं**।

यह स्वयं कल्पित किए हुए –

शगुन

अपशगुन

वहम

भ्रम

निश्चय

मनौत

हमारे अन्तर – गत **मन में – कई जन्मों से धँस, बस, रस कर दृढ़ हो चुके हैं।**

जब तक हम, 'कुँए के मेंढक की तरह', इन भ्रमों के **अँधेर – खाते' में प्रवृत्त हैं** – तब तक हमारी आत्मिक उन्नति नहीं हो सकती।

परंतु जब हम इन वहमों अथवा भ्रमों को 'धर्म' अथवा मज़हब के साथ 'जोड़' देते हैं, तब तो यह 'भ्रम' हमारे **धार्मिक जीवन का 'अंग' ही बन जाते हैं**।

जब इन 'भ्रमों' पर **धर्म अथवा मज़हब का 'ठप्पा' लग जाता है, तो इन की 'जकड़' में से निकलना असंभव हो जाता है**।

इसी **'भ्रम – भुलाव' में से उत्पन्न विरोधी ख्यालों** और **निश्चयों के कारण ही संसार में –**

ईर्ष्या – द्वेष
वाद – विवाद
स्वार्थ
लूट पाट
बेईमानी
भ्रष्टाचार
झगड़े
जुल्म

का बोलबाला तथा व्यवहार है ।

गुरबाणी हमें इन वहमों भ्रमों के विषय में यूँ मार्गदर्शन करती है –

सगुन अपसगुन तिस कउ लंगहि जिसु चीति न आवै ।। (पृ. ४०१)

छनिछरवारि सउण सासत बीचारु
हउमै मेरा भरमै संसारु ।। (पृ. ८४१)

सतिगुर बाझहु अंध गुबारु ।।
थिती वार सेवहि मुगध गवार ।। (पृ. ८४३)

कोई पूजै चंदु सूरू कोई धरति अकासु मनावै ।।.....
फोकटि धरमी भरमि भुलावै ।। (वा. भ. गु. १/१८)

सउण सगुन वीचारणे नउ ग्रिह बारह रासि वीचारा ।
कामण टूणे अउसीआ कणसोई पासार पसारा ।
गदहु कुते बिलीआ इल मलाली गिदड़ छारा ।
नारि पुरखु पाणी अगनि छिक पद हिडकी वरतारा ।
थिति वार भद्रा भरम दिसासूल सहसा सैसारा ।
वलछल करि विसवास लरव बहु चुरवी किउ रवै भतारा ।
गुरमुखि सुरव फलु पारि उतारा । (वा. भा. गु. ५/८)

इसी लिए मानसिक 'भ्रम' में फँसे हुए 'जीवों' को गुरबाणी में **'साकत' या 'मनमुख' कहा गया है ।**

मनमुखि अंधा सबदु न जाणै झूठै भरमि भुलाना ।। (पृ ६०४)

मनमुख कोठी अगिआनु अंधेरा तिन घरि रतनु न लाखा ।।
ते ऊझड़ि भरमि मुए गावारी माइआ भुअंग बिखु चाखा ।। (पृ. ६६६)

भरमे भूला साकतु फिरता ।।
नीरु बिरोलै खपि खपि मरता ।। (पृ ७३६)

परंतु जब हम गुरबाणी की ये पंक्तियाँ **पढ़ते या सुनते हैं तो हम समझते हैं कि 'मनमुख' या नास्तिक शब्द हम पर लागू नहीं होते, किसी और के लिए प्रयोग किए होंगे**, क्यों कि हम अपने आप को –

ज्ञानी
पंडित
वैज्ञानिक
भले–भद्र
आधुनिक
सयाने ही

समझते हैं । हमें दृढ़ अहसास है, कि हम तो लोगों की **अनपढ़ता के अँधकार को दूर करके, नवीन रौशनी का ज्ञान देते हैं, इस लिए भ्रम हमारे पास नहीं आ सकता** । परंतु गुरबाणी हमारे **मानसिक भ्रमों** के विषय में यूँ ताड़ना करती है ।

कथनी कहि भरमु न जाई ।।
सभ कथि कथि रही लुकाई ।। (पृ ६५५)

पड़ि पड़ि गडी लदीअहि पड़ि पड़ि भरीअहि साथ ।।
पड़ि पड़ि बेड़ी पाईऐ पड़ि पड़ि गडीअहि खात ।।
पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास ।।
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास ।।
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख ।। (पृ ४६७)

बहुतु सिआणप जम का भउ बिआपै ।।
अनिक जतन करि तृसन ना ध्रापै ।। (पृ २६६)

हमारी दिमागी –

सयानपें
चतुराइयाँ
विद्या का ज्ञान
फिलौसफियाँ

त्रि – गुणी मायिकी मंडल के भ्रम – भुलाव के दायरे में ही सीमित है । इस लिए **दिमागी ज्ञान की 'ख्याली उड़ान' और प्रवृत्ति भी, मायिकी मंडल के 'भ्रम – गढ़' की 'आन्तरिक' प्रकृति और प्रवृत्ति की ही 'धुँधली' सूझ या ज्ञान दे सकती है** । परंतु, इस से परे, **'आत्म – प्रकाश' तक इस की पहुँच नहीं है । 'आत्म मंडल' की प्रकाशमयी सूझ के लिए केवल अनुभवी आत्मिक ज्ञान की आवश्यकता है** ।

परंतु हम, अपनी अज्ञानता कारण – **आत्म मंडल के उच्च, पवित्र, आत्मिक 'भेदों'** को भी पुराने स्वभाव अनुसार, **अल्प – बुद्धि से समझने में ही** –

व्यस्त हैं
गलतान हैं
मस्त हैं
संतुष्ट हैं और
फूले नहीं समाते हैं ।

यद्यपि, गुरबाणी में स्पष्ट बताया गया है : –

बहुतु सिआणप भरमु न जाए ।।
पचि पचि मुए अचेत न चेतहि अजगरि भारि लदाई हे ।। (पृ १०२५)

पड़े सुने किआ होई ।।
जउ सहज न मिलिओ सोई ।। (पृ. ६५५)

परंतु, हमें अभी तक यह **सूझ ही नहीं आई, कि आत्मिक मंडल का 'प्रकाश – मयी – तत् ज्ञान' दिमागी अल्प बुद्धि की 'पकड़' से दूर है** ।

इसी लिए हम अपनी अल्प बुद्धि से प्राप्त किए खोखले एवं अधूरे ज्ञान का प्रचार करके ही संतुष्ट हैं । इस तरह हम, श्रोताओं को अपनी तरह ही भ्रम – भुलाव की गलतफहमियों में फँसाई रखते हैं ।

यह बात और भी दुखदाई है, कि हम इस **'आत्म – तत् – ज्ञान' रूपी गुरबाणी** का पाठ, गायन और प्रचार करते हुए भी – उस **मानसिक अज्ञानता के 'भ्रम' में गलतान हैं ।**

जन्म जन्मों से स्थूल मायिकी मंडल में विचरण करते हुए, हमारी सीमित बुद्धि का **दृष्टिकोण और ज्ञान भी मोटा, स्थूल और पदार्थिक हो चुका है**, और हम अति सूक्ष्म **प्रकाश – मयी आत्मिक मंडल के अस्तित्व और प्रकृति को समझने, बूझने, चीन्हने से असमर्थ हैं ।**

इस लिए हम इसी **भ्रम – मयी** धुँधले 'दृष्टिकोण' से ही 'आत्मिक मंडल' की –

हस्ती
प्रकाश
प्रकृति
प्रवृत्ति

के विषय में –

विचार करते हैं
सोचते हैं
खोजते हैं और
परखते हैं ।

इस तरह, हम गुरूओं, अवतारों, देवी – देवताओं को, **अपनी मायिकी** –

दुखों की निवृत्ति के लिए
बीमारियों के इलाज के लिए
जायज़ – नाजायज़ स्वार्थों की पूर्ति के लिए
तृष्णा की पूर्ति के लिए
पापों को छिपाने के लिए
यम से बचने के लिए
लोगों में 'वाह – वाह' कमाने के लिए
भले – भद्र बनने के लिए
धार्मिक मार्गदर्शक बनने के लिए

लोगों के साथ वाद – विवाद के लिए
ही **प्रयोग करते** हैं, **और इसी मनोरथ के लिए हम –**

पाठ – पूजा करते हैं
जप – तप करते हैं
हठ करते हैं
कुरबानियाँ देते हैं
नेकियाँ करते हैं
एवं और अनेक किस्म की धार्मिक कठिन साधनाएँ करते हैं।

यह सब कर्म – क्रिया, **मायिकी मंडल के 'भ्रम' का ही प्रकटाव और प्रवृत्ति है –** जिससे हम अपने आप को **झूठी तसल्ली दे कर, 'धार्मिक' होने का दावा करते रहते हैं।**

दूसरे शब्दों में, हम ने 'परमात्मा', गुरूओं, अवतारों, देवी – देवताओं को 'दुकानदार' (shopkeeper) ही समझा हुआ है, और उनके साथ **सौदे बाजी** (bargaining) **का ही व्यवहार करते हैं !!**

मायिकी जीवन की कामनाओं तथा **गरजों की ग्राहकी की बहुलता को पहचान कर –** अनेक तथा कथित गुरूओं, अवतारों, महात्माओं, साधु – संतों ने धार्मिक ठाट – बाठ रचे हुए हैं, जिन में मानसिक, धार्मिक तथा आर्थिक ग्राहकों की भीड़ लगी रहती है।

इस मायिकी 'भ्रम – गढ़' के 'अँधेर बाज़ार' में अनन्त वाणिज्य – व्यपार और सौदेबाजी होती रहती है, जिस में पढ़े – लिखे, विद्वान, वैज्ञानिक, 'भले – भद्र', 'धार्मिक' लोग भी खुल्लम – खुल्ला हिस्सा लेते हैं !!

परंतु गुरबाणी में इस मायिकी 'सौदे बाज़ी' को यूँ दर्शाया गया है –

बहु ताल पूरे वाजे वजाए ।। ना को सुणे न मंति वसाए ।।
माइआ कारणि पिड़ बंधि नाचै दूजै भाइ दुखु पांवणिआ ।। (पृ १२२)

पंडति जोतकी सभि पड़ि पड़ि कूकदे किसु पहि करहि पुकारा राम ।।

माइआ मोहु अंतरि मलु लागै माइआ के वापारा राम ।। (पृ. ५७१)

कोटि मधे को विरला सेवकु होरि सगले बिउहारी ।। (पृ. ४६५)

यदि ईमानदारी से गौर करके, **हमारी मानसिक हालत को आत्मिक कसौटी के आधार पर जाँचा जाए, तो प्रतीत होगा कि –**

त्रि गुणी **मायिकी मंडल**	**ही**	हमारा संसार है ।
'भ्रम गढ़'	**ही**	हमारा देश है ।
पाँच 'दूत' काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार	**ही**	हमारे **गुरू हैं**, जिनका हम आदेश मानते हैं, और **सेवा करते** हैं ।
इन पाँचों की **चाकरी करनी**	**ही**	हमारी भक्ति अथवा 'कर्म – धर्म' है ।
भ्रमों में प्रवृत्त रहना	**ही**	हमारा **'परमार्थ'** है ।
माया में गलतान होना	**ही**	हमारा **'धर्म' या मज़हब'** है ।
अन्तर – आत्मा में बसे निरंजन को बाहर खोजना	**ही**	हमारी **धार्मिक 'साधना'** है ।
अमूल्य 'जन्म' को झूठी माया में बहा देना	**ही**	हमारा 'करतब' है ।
झूठी माया को सच समझना	**ही**	हमारी **सयानप** है ।
विकारों में प्रवृत्त होना	**ही**	हमारा **शुगल** है ।
'प्रभु' को भुलाना	**ही**	हमारी सभ्यता है ।
नास्तिक होना	**ही**	हमारा अभिमान **एवं आधुनिकता** है ।
तृष्णा की पूर्ति	**ही**	हमारी **जीवन सेध** है ।

भले – भद्र और बड़े बनना **ही** हमारा **जीवन मनोरथ** है ।
मोह माया में फँसना **ही** हमारी **जीवन क्रिया** है ।
झूठी माया और संपदा **ही** हमारी **जीवन मंज़िल** है ।
एकत्रित करनी

हमारी ऐसी मानसिक हालत के विषय में गुरबाणी में यूँ–ताड़ना और मार्गदर्शन किया गया है –

जो तन तै अपनो करि मानिओ अरु सुंदर गृह नारी ।।
इन में कछु तेरो रे नाहनि देखो सोच बिचारी ।।
रतन जनमु अपनो तै हारिओ गोगिंद गति नही जानी ।।
निमख न लीन भइओ चरनन सिंउ बिरथा अउध सिरानी ।। (पृ २२०)

मुकति पंथु जीनिओ तै नाहनि धन जोरन कउ धाइआ ।।
अंति संग काहू नही दीना बिरथा आपु बंधाइआ ।।
ना हरि भजिओ न गुर जनु सेविओ नह उपजिओ कछु गिआना ।।
घट ही माहि निरंजनु तेरै तै खोजत उदिआना ।। (पृ ६३२)

छोडि जाहि से करहि पराल ।। कामि न आवहि से जंजाल ।।
संगि न चालहि तिन सिउ हीत ।। जो बैराइ सेई मीत ।।
ऐसे भरमि भुले संसारा ।। जनमु पदारथु खोइ गवारा ।। रहाउ ।।
साचु धरमु नही भावै डीठा ।। झूठ धोह सिउ रचिओ मीठा ।।
दाति पिआरी विसरिआ दातार ।। जाणै नाही मरणु विचारा ।।
वसतु पराई कउ उठि रोवै ।। करम धरम सगला ई खोवै ।।
हुकमु न बूझै आवण जाणे ।। पाप करै ता पछोताणे ।। (पृ ६७६)

मन के ऊपरी से ख्याल, निश्चय और श्रद्धा से हम जो भी धार्मिक कर्म – क्रिया करते हैं, वह सब **भ्रम – मयी अल्प बुद्धि तक ही सीमित रहते हैं** और **इन की 'आत्मिक – प्रकाश' तक पहुँच नहीं है ।**

हरि की गति नहि कोउ जानै ।।
जोगी जती तपी पचि हारे अरु बहु लोगसिआने ।। (पृ ५३७)

जन्म – जन्मों से मायिकी भ्रम में विचरण करते हुए, हमारा **मायिकी दृष्टिकोण 'स्थूल' और पदार्थिक' हो चुका है,** जिस कारण हम परमात्मा, **गुरूओं, अवतारों**

को भी स्थूल रूप अथवा देह में, अपनी स्थूल आँखों से ही, दर्शन करने या मिलने की कल्पना और लालसा करते हैं ।

परमात्मा – गुरू – अवतार तो सूक्ष्म 'शबद' अथवा 'नाम' स्वरूप होते हैं । इन के दर्शन **केवल अन्तर्तात्मस में 'अनुभवी – प्रकाश द्वारा ही हो सकते हैं ।** परंतु हमें 'शबद', 'नाम' **'अनुभव – प्रकाश' की विचार अथवा सूझ ही नहीं,** क्यों कि भ्रम भुलाव की अज्ञानता में, **हमारी अल्प बुद्धि की, आत्म मंडल के अनुभवी प्रकाश तक पहुँच नहीं है ।**

सतिगुर नो सभु को वेखदा जेता जगतु संसारु ।।
डिठै मुकति न होवई जिचरु सबदि न रि वीचारु ।। (पृ ५६४)

इसी कारण इतने धार्मिक पाठ, पूजा, कर्म – क्रिया, जप, तप, हठ, योग, प्राणायाम आदि **साधना और प्रयत्न करते हुए भी, हमें परमात्मा के दर्शन और मिलाप नहीं होता ।**

पाठु पड़िओ अरु बेदु बीचारिओ निवलि भुअंगम साधे ।।
पंच जना सिउ संगु न छुटकिओ अधिक अहंबुधि बाधे ।।
पिआरे इन बिधि मिलणु न जाई मै कीए करम अनेका ।। (पृ. ६४१)

कूर क्रिया उरझिओ सभ ही जग श्री भगवान को भेदु न पाइओ ।।
(सवैये पा. १०)

(क्रमश.....)